लौहित्य साहित्य सेतु : सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 1, संख्या: 1; जुलाई-दिसंबर, 2020

खोज

मधु कांकरिया

निराशा में बहते मन को थामने के लिए उस शाम मैं कोलकाता की सबसे बड़ी किताबों की दूकान 'न्यू मेंस' चली गयी। बहुत दिनों से कुछ भी अच्छा पढ़ा नहीं था इसलिये कुछ अच्छा पढ़ने की बेताबी थी, पर जैसे ही अन्दर घुसी आँखें झटका खा गयी- क्या गलत दुकान में घुस गयी ? वहाँ किताबों की बजाय साड़ियाँ टंग रही थी, 'वाय वन गेट वन' की कूल कूल दुनिया थी। वहाँ के किसी कर्मचारी से पूछा तो उसने पलटकर मुझे ही डपट दिया- कितने दिनों के बाद निकली हैं आप घर से ? क्या मतलब ? मतलब इस काया कल्प को साल भर से ऊपर हो गया। ओह नो ! निराश मन और दुखी हो गया - इतनी पुरानी और इतनी बड़ी इकलौती किताबों की दुकान ! समय को अपने भीतर समाये कागज़ों की एक परिचित पुरानी गंध, इसे बंद नहीं होना था। मेरी सांत्वना के लिए जैसे एक कोने में कुछ किताबें और पत्रिकाएँ भी उपेक्षित सी पड़ी थीं पर अब वह किताबों की नहीं साड़ियों और कपड़ों की दुकान थी। पर कुछ भी हो अभी मैं घर नहीं लौटने वाली। आगे पीछे यूं ही बेमकसद चलने लगी .. सचमुच इन सालों में कोलकाता थोडा बदल गया था, चेहरा वही था बस मेकअप चढ़ गया था। सड़कें और लोग वैसे ही थे .. पस्तहाल लेकिन दुकानें और गाड़ियाँ बढ़ गयी थी। शहरों की दीवारें मोबाइल कम्पनियों के विज्ञापन से रंगी हुई थी। इन विज्ञापनों से टक्कर ले रहे थे पेप्सी और कोका कोला के भीमकाय विज्ञापन जो बस अड्डों, ट्राम अड्डों, दुकानों, रेलवे स्टेशन, एअरपोर्ट पर .. हर जगह धूप और हवा की तरह मौजूद थे । एकाएक दिखी सामने से आती मिनी बस जो नीमतल्ला घाट की ओर जाने वाली थी, मैंने हाथ दिखाकर उसे रोका और उसी में चढ़ गयी। मन किया श्मशान घूमने का। छोटी उम्र में हिम्मत नहीं कर पायी थी जलती चिता को देखने की। रास्तों का भी पूरा ज्ञान नहीं था। घरवाले जाने भी नहीं देते थे। आज मौका था।

बस में जैसे ही घुसी एक महिला आरक्षित सीट खाली हुई, राहत की सांस ले उसपर बैठने ही लगी थी कि देखा एक अधेड़ अपने आठ नौ वर्षीय विकलांग लड़के को कंधे पर लेकर थका हरा बेजान सा खड़ा था... अरे अभी तक किसी ने उसे अपनी सीट क्यों नहीं दी, जाने कब से इतनी जानलेवा उमस में बेटे को लिए खड़ा है बेचारा ? कल देखा था एक आदमी सड़क पर घायल पड़ा था, सब देख रहे थे और आगे बढ़ रहे थे। इतने मानवीय बंगाली !

दुनिया को सुन्दर बनाने वाले बंगाली, क्या होता जा रहा है इन्हें ? क्यों बदल रहा है इनका भी मानवीय चरित्र ? फिर उगने लगे सवाल ? उफ़ ! गर्दन को झटक इशारे से उन्हें बुलाया मैंने और उस खाली सीट पर बैठाया।

पुराने काले कम्बल सा नीमतल्ला और उसके एक तरफ एक चौड़ा खुला नाला और उसके दूसरी तरफ काले नीले पोलिथिन की सहायता से बनी स्याही के काले धब्बों सी फैली बस्तियाँ। मच्छर, धूल, गर्द, प्लास्टिक के कचरे, बदबू और गंदगी से बजबजाती बेशुमार बस्तियाँ। धुन्धलाती मानव आकृतियाँ। धूल में रेंगते चूजों और कुत्तों के बच्चों से खेलते काले नंगे, फुले पेट और कमजोर हाथों वाले बच्चे। चप्पल की जगह बिसलेरी की खाली बोतल को रस्सी के सहारे पैरों से बांधे एक युवक। तकिये की जगह ईंट को सिरहाने लगाये एक किशोर। छोटी सी रेलवे लाइन और उसके पार दाहिनी तरफ श्मशान घाट। पुलिस थाना। तीन तीन घाट। दो विद्युत् घाट और एक 'काठेर टुल्ली' यानी लकड़ी से जलने वाली चिताओं का घाट, जहाँ इतनी भीड़ भाड़ नहीं थी, शायद लकड़ी की चिता महँगी थी और समय भी ज्यादा लेती थी इसलिए यहाँ सिर्फ एक जलती हुई चिता थी। पीछे बहती गंगा। एक कतार में बनी छोटी छोटी दुकानें। फूल, अगरवत्ती, मिटटी की हांडी, नारियल से लेकर चाकलेट, बिस्किट, समोसा, मिठाई, चाय सभी बिकते हुए। एक तरफ जीने के सामान दूसरी तरफ मृत्यु की मणिकर्णिका !

समय की धारा से कटे उन क्षणों जो देखा उसका चित्त, चेतना और मन पर जो प्रभाव पड़ा वह वर्णनातीत था। जीवन की स्थूलताओं से पीछा छुड़ाने के लिए एक बार यहाँ अवश्य आना चाहिए। मन के सारे विकारों, दुराग्रहों और राग द्वेष को जलाती चिता। देखती कुछ और सोचती कुछ और मैं विद्युत् घाट की ओर बढ़ने लगी। फिर देखा किसी लावारिस लाश के अंतिम संस्कार के लिए सड़क की एक ओर खड़ी चाँदी सी चमकती 'हिन्दू सत्कार समिति' की गाड़ी जिसके पारदर्शी शीशों से झाँक रहा था, गाड़ी के बीच चिर निद्रा में लीन मुर्दा।

विद्युत् घाट ! बाहर कंप्यूटर के परदे पर देखा जा सकता था कि कौन सी भट्टी चालू है। एक कतार में करीब सात आठ भट्टियाँ, बीच मे लोहे की जालियों से बने बड़े बड़े दरवाजे। हर कतार में रखे मुर्दे अपनी अपनी बारी की प्रतीक्षा में। वहीं देखा एक हाई फाई युवा मुर्दा। मुर्दे को घेरे ढेर सारे स्वजन, घी चुपड़ी देह। कोई ललाट पर चन्दन का लेप कर रहा था तो कोई उसके कफ़न पर बुरादा जैसी कोई चीज बुरका रहा था। करीब आधे घंटे तक चलते रहे सभी नेक-चार। फिर वहीं उसके पुत्र, नहीं उसके भाई ने चार पाँच जलती पतली-पतली लकड़ियों से उसके मुँह पर मुखाग्नि दी, और फिर तुरंत ही इस रस्म को पूरा कर अपने रूमाल से

उसके ओंठों और पास की जगह को पोंछा। यह दृश्य भी बहुत ही मार्मिक था। अब शव तैयार था विद्युत् भट्टी में भेजने के लिये। फिर शव को उठाया गया, उसे उठाते ही जैसे शरीर का कोई हिस्सा कट कर अलग हो रहा हो, वैसे ही उसकी पत्नी, माँ-बाप और परिजन चीख मार मार रोने लगे। फिर राम नाम सत्य के उद्घोष के साथ ही मृत शरीर को विद्युत् भट्टी के बाहर लगे लोहे के तख्ते पर रखा गया। यह लक्ष्मण रेखा थी, स्वजन को यहीं रोक दिया गया था। हम इस पार वह उस पार। आगे की यात्रा उसे अकेले ही तय करनी होगी। फिर वहाँ के कर्मचारियों ने बटन दबाया और खरामा खरामा शव भट्टी के अन्दर, यह ठीक वैसे ही था जैसे एमआरआई के लिए किसी व्यक्ति को मशीन के अन्दर स्वचालित यंत्र द्वारा घुसाया जाता है। उन क्षणों जब उस शव को विद्युत् भट्टी में घुसाने के लिए उठाया गया, मुझे लगा जैसे उस मृत व्यक्ति की जगह मैं लेटी हूँ। अकेली, अपने सारे लेखा जोखा के साथ। अपने सभी पाप और पुण्यों के साथ। अपने सभी प्रिय जनों को, दुश्मनों को पीछे छोड़ते हुए... जीवन की अंतिम सच्चाई का सामना करने के लिए, अनंत के सामने अकेली ! मन को शांत करने के लिए मैं थोड़ी देर के लिए श्मशान घाट से लगे बरामदे में आ गयी।

सामने बहती गंगा !

मेरे साथ वह युवती भी थी जो उस मृत शव के पास खड़ी थी, जिसे विद्युत् भट्टी के भीतर ले जाया जा रहा था। कौन थे वे ? हठात मेरे मुँह से निकल गया। वे मेरे पड़ोसी थे, बाबुलदा। बेहद दर्दनाक मौत थी यह। मात्र पैंतीस वर्ष के थे बाबुलदा... बोलते-बोलते उसका गला भर आया था। क्या हुआ था? कैंसर... ईश्वर किसी को न दे, मौत तो आनी ही है, पर कैंसर का मरीज हर पल मौत के खौफ में कांपता, मौत के साथ रहता, अपनी मौत को सामने साइन बोर्ड की तरह लिखा हुआ देखता है- मुझे मरना है। कब हुआ था, कब पता लगा? तांत की सफ़ेद साड़ी के आँचल से आँखें पोंछती हुई बोली वह- करीब दो साल पहले ... क्या होता है कैंसर ? आप यूं समझिये कि कैंसर एक प्रकार का जंगली पौधा होता है, जो हठात आपकी जमीन पर तेजी से फ़ैलने लगता है और जो उपयोगी पौधे हैं बॉडी के लिए उनको आपकी देह की जमीन से बाहर करता जाता है। अब आप क्या करेंगे ? आपको तो अपनी देह-जमीन को बचाना है तो पहले तो आप उसे तुरंत आगे बढ़ने से रोकेंगे, उस जमीन को सील करेंगे,बल्कि जितनी जमीन प्रभावित है उससे भी थोड़ी आगे तक की जमीन को सील करेंगे फिर उन जंगली पौधों को जड़ सहित उखाड़ेंगे तो यह तो हुआ सर्जरी जिसे हम कहते हैं कि ट्यूमर निकाल दिया, बाबुलदा के भी आंतड़ियों में ट्यूमर था। सबसे पहले एक फुट आंतड़ी काटी गयी। उसके बाद आप उस जमी को भी जला देंगे जिससे कोई अदृश्य बीज भी बचे हों तो वे भी जल जाएँ और आसपास का प्रभावित इलाका भी किटाणुमुक्त हो जाए तो यह

हुआ कीमोथेरेपी। उसके बाद भी और भी सावधानी के लिए आप उस जमीन पर ही एसिड डाल देंगे जिससे सम्भावना एकदम ही मर जाए तो यह हुआ रेडिएशन। यह लोकल होता है। एक लम्बी साँस खींची उसने और फिर कहने लगी, बड़ी ही रंगीन तबियत के थे दादा.. सारे इन्द्रधनुषी रंग से सराबोर थी जिन्दगी। जीवन में, व्यापार में, रसूख में .. सभी जगह ऊँची उड़ान ! घड़ी पहनते तो रोलेक्स की जो तीस-चालीस हज़ार से कम की नहीं थी। धूप वाला चश्मा पहनते तो दस पन्द्रह हजार से कम की नहीं। पाँच-छह लाख की एक नग की हीरे की अंगूठी अलग से ही दमकती थी तर्जनी में । घर के ड्राइंग रूम की सजावट में करोड़ों खर्च कर दिए .. नेपोलियन बोर्नापाट की तरह गरूर में गर्दन ऊँची कर सब रिश्तेदारों को, दोस्तों को दिखाते थे सजावट। हर महीने पार्टी। लेकिन जैसे ही पता लगा कैंसर का .. सारे रंग, सारे अलंकरण झड़ गए। जैसे जीवन की सच्चाई से रुबरू होने पर सिद्धार्थ का मन बदल गया था। दादा भी एकदम बदल गए थे। शुरू शुरू में तो स्वीकार ही नहीं कर पाए इस सच्चाई को और जब पता लगा .. बस कुछ साल ही बचे हैं, तो एकदम ही बदल गयी दिनचर्या। अय्याश से एक पवित्र आत्मा बन गए। अधिक से अधिक मनुष्य होने की कोशिश में लग गए। कुछ दिन तो इतने सदमें में रहे कि अपना प्रिय अखबार 'आनंद बाज़ार पत्रिका' तक पढ़ना छोड़ दिया, कपड़े तक सिलवाने बंद कर दिए। धीरे धीरे सदमे से उबरे तो पूरे दमखम के साथ लग गए जिन्दगी को संवारने में। परिवार की हिफाजत में। चौथी कीमोथेरेपी के बाद झड़ते बाल और अपना बेनूर चेहरा देख मन इतना खराब हुआ कि दर्पण में शक्ल तक देखना बंद कर दिया था .. अब बस दुःख और अफ़सोस रह गया ... कि सारी जिन्दगी झूठ और दिखावे से घिरा रहा। जिन्दगी का नक्शा काश पहले दिख जाता तो जिन्दगी की इतनी फिजूलखर्ची नहीं होती, आज सब कुछ वैसा ही था .. बस समय नहीं था।

गंगा की लहरों को देखते देखते दार्शनिक अंदाज़ में कहना जारी रखा उन्होंने- उनको बिना देखे विश्वास करना मुश्किल था कि ये वे ही खूबसूरत बाबुलदा थे जो घर में कभी दिखते ही नहीं थे। वे अब घर छोड़ मुश्किल से कहीं बाहर जा पाते थे। जो पहले सिर्फ अपने लिए सोचते थे वे अब कीमोथेरेपी की पीड़ा और वक़्त की टिक टिक सुनते सिर्फ अपनों के लिए सोचने लग गए थे। लम्हे लम्हे का हिसाब रखते। जिस पत्नी को कभी सुना नहीं, अब दिन-रात उसी को सुनते और उसी के लिए सोचते थे कि कैसे इसे सुरक्षित कर जाऊँ ! कितनी एफ.डी कर जाऊँ ! दिन रात पत्नी को हिसाब समझाते। पत्नी के लिए दूसरा वर देखना भी शुरू कर दिया था .. जाते जाते भी कह गए थे 'तुमि अवार बीए कोरे नेवे (तुम दूसरा विवाह कर लेना)'। कहते भी थे कि अपनी पत्नी को पतिहीन, संतानहीन देखते हुए कैसे मैं इस पृथ्वी से विदा ले सकता हूँ। यह तो बउदी ने कसम दिलाई कि वे जाने से पहले

संतान का मुख उन्हें दिखा दें । पहले तो बाबुलदा नहीं माने पर कुछ तो संतान मुख देखने की खुद की अभिलाषा और कुछ मौत के मुंह में जाने से पहले पत्नी की इकलौती इच्छा, डॉक्टर से सलाह कर वे राजी हो गए । और ईश्वर का करिश्मा देखिये कि साल भर के भीतर बेटा हो भी गया.. मौत की छाँह में नवजीवन का अंकुर.. ऐसा ही कहा था दादा ने । और उसके भी साल भर बाद तक जीवित रहे बाबुलदा, जीवित क्या रहे जिन्दगी को निगलते रहे । सच, मौत के पास खड़ा अकेला आदमी जिन्दगी को शिद्धत से प्यार करता है । हर रविवार बेटे को घुमाने ले जाते.. चेष्टा रहती कि ऐसी जगह ले जाएँ कि उस के साथ गुजरे कुछ लम्हे उसकी स्मृति में टंगे रहे, ढेरों तस्वीर खिंचवाते उसके साथ पर दस ग्यारह महीने की नन्ही जान.. क्या तो याद रखे.. बस तस्वीरें गवाह है । वे डॉक्टरों से अक्सर कहते थे कि मुझे प्लीज अपनी 'एक्सपायरी डेट' के बारे में बता दीजिये जिससे मैं अपनी जिन्दगी को प्लान कर सकूँ । यदि मेरे पास पाँच साल का समय है तो मैं अपने व्यापार में ध्यान दूँगा और यदि मेरे पास सिर्फ साल भर है तो मैं अपने परिवार और ईश्वर के साथ समय बिताऊँगा । और यदि मेरे पास सिर्फ छह महीने या उससे भी कम समय हैं तो मैं महीने भर के लिए तीर्थ यात्रा पर निकल जाऊंगा । पर अफ़सोस डॉक्टर निश्चित रूप से कुछ भी नहीं बता पाए । और दो साल के इस दौरान भी वे न जी पाए न मर पाए.. वे बस बायोप्सी, टेस्ट, स्कैन, कीमोथेरेपी और रेडियोथेरेपी के बीच झूलते रहे । घरवाले पंडितों और ज्योतिषों के चक्कर लगाते रहे । महामृत्युंजय मंत्र का जाप और माँ काली को पूजा देते रहे । जब जब चित्त उखड़ जाता वे 'लाइफ आफ्टर डेथ' शीर्षक किताब पढ़ते रहते। धर्म, भाग्य और दर्शन में शांति ढूंढ़ते रहे और अंतिम दिनों में तो उनकी जर्रा जर्रा बिखरी देह जैसे एक जिन्दा एक्स रे बन गयी थी.. बोलते बोलते नम हुई आँखों को साड़ी के कोर से पोंछा उसने, सामने बहती गंगा पर एक नज़र डाली, एक दीर्घ सांस खींची ।

कुछ खामोश पल ।

- आपकी उनसे क्या अक्सर बात होती थी ?

- हाँ ! एकदम शुरू में तो लगभग हर शाम । हम उन्हें बिलकुल भी अकेला नहीं छोड़ते थे । उन्हीं दिनों दादा ने बहुत ही मार्मिक बात कही थी- जिनके समक्ष अपनी हैसियत का दिखावा करने के लिए करोड़ों खर्च किया वे ही आज तरस खाते हैं मुझ पर.. रहता हूँ करोड़ों के फ्लैट में लेकिन भीतर एक खंडहर के सिवा कुछ नहीं है । ऊफ ! कितना गुमान था अपनी जवानी, पैसे, ताकत, व्यापारिक ऊँचाइयों और दमकते रूप पर । एक बार चेहरे पर एक फुंसी उग आई थी तो मैं अपने साले के रिसेप्शन की पार्टी में नहीं गया कि ऐसे चेहरे के साथ क्यों जाऊँ । पर कैंसर ने बता दिया क्या हूँ मैं, क्या है रूप? क्या है शरीर ? गंदे कपड़े का एक फटा चिथड़ा भर ! और यह देह ? दर्द ,गर्द और गुबार का एक दरिया भर ! सही है कि जिन्दगी जब हाथों से

फिसलने लगती है तभी समझ में आती है .. बोलते बोलते वह बार बार घड़ी देख रही थी, घंटे भर का समय दिया था विद्युत् भट्टी वालों ने जो शायद पूरा होने वाला था । मैंने फिर कुरेदा तो उसने बड़े ही रहस्यमय अंदाज में कहा- कई बार मुझे लगता है कि बाबुलदा और बऊदी की शादी कैंसर के चलते बच गयी, दोनों के बीच मुहब्बत इस हादसे के बाद ही पनपी थी । क्योंकि कैंसर ने बाबुलदा की दृष्टि ही बदल दी थी और दृष्टि के बदलते ही उनकी सृष्टि भी बदल गयी !

मुझे ताज्जुब हुआ कहने को तो पड़ोसी पर कितना कुछ जानती है, आखिर पूछ ही डाला मैंने- आप इतनी बात कैसे जानती हैं ?

वह हँस पड़ी,उदासी का अक्स भी शामिल था उस में- दरअसल बाबुलदा ने घर में बहुत ही बोल्ड चेहरा ओढ़ा हुआ था, क्योंकि घर में सभी उनसे छोटे थे। माँ-बाप बूढ़े हो चले थे। उनसे कुछ भी बोलकर हलके हो नहीं सकते थे तो मेरे पति के पास अक्सर वे अपने को खोल देते थे- अपना दुःख, अपना डर, अपना अफ़सोस.. सबकुछ । बऊदी को भी मैं ही मिलती थी .. उनकी हमउम्र । बऊदी ने ही कहा था एक बार, कैंसर ने तुम्हारे दादा की भीतरी सुन्दरता खिला दी।

मौत का सामना कैसे किया उन्होंने? यह मेरा आखिरी सबाल था।

एकदम शुरु में तो कहते थे मुझे डर लगता है मरने से, लेकिन जैसे जैसे समय नजदीक आ रहा थे वे मौत के खौफ से बाहर निकल मानसिक रूप से खुद को तैयार कर रहे थे । पौने दो साल उन्होंने ठीक ठाक निकाल दिए । लेकिन कैंसर लीवर में भी फ़ैल गया था । फिर एक दिन एकाएक उन्हें सांस लेने में दिक्कत होने लगी, कार्बन डाइऑक्साइड का लेवल बहुत बढ़ गया था, तब उन्हें फिर हॉस्पिटल ले गए । इसबार हालत गंभीर थी । उनके अंग काम नहीं कर रहे थे.. मल्टी ऑर्गन फेलियर । यही बताया था डॉक्टरों ने.. बाबुलदा भी समझ गए थे । वे अब और पैसों की बर्बादी नहीं चाहते थे, उनकी चेतना में भी अब जीवन कम मृत्यु अधिक थी । इसलिए मृत्यु से दो दिन पहले उन्होंने वेंटीलेटर सहित सारे लाइफ स्पोर्टिंग सिस्टम हटवा दिये और पत्नी से कहा- मैं तैयार हूँ .. बस एक बार रोहित .. (बेटा), बऊदी रोहित को लेकर आई । बेटे को देखा तो आँखें भर आई उनकी, उसे आखिरी बार चूमा और एक छोटा सा पत्र उसके नन्हे हाथों में थमाया । बऊदी ने उन्हें उनके प्रिय हिमसागर आम की एक फांक आखिरी बार चखानी चाही तो इनकार कर दिया । कितना कमाया पर अपने हाथों किसी को कुछ नहीं दिया था और अब खाली हाथों जा रहे थे। उनकी माँ ने उनके हाथों का स्पर्श करा कुछ रूपये दान कराए- कर दो बेटा .. देना ही जिन्दगी है !

आँसू, प्रेम-आदर, माँ-बाप का चरण स्पर्श, भाई, बहन, मित्र .. सभी का दुलार भरा स्पर्श .. अंतिम इच्छा, अंतिम प्रणाम .. भावनाओं से भरा आलिंगन उनके प्रति हम सबने व्यक्त किया .. क्योंकि

अब उनकी इच्छानुसार सारे लाइफ स्पोर्टिंग सिस्टम हटने वाले थे। अब कभी भी .. अब सिर्फ और सिर्फ मोर्फिन था उनके साथ। उनकी माँ ने भी हिम्मत रखी और उनके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा-शांति से जाओ पुत्र ! हमें गर्व रहेगा तुम पर। आँसू भरी आँखों के साथ अंतिम बार हाथ जोड़े उन्होंने।

ऊपर से शांत लेकिन भीतर डर या बेचैनी .. होश रहते बऊदी का हाथ इतना कसकर पकड़ रखा था उन्होंने कि उनके हाथ दुखने लगे थे। आधे घंटे बाद ही मास्क और मोनिटर सब बंद थे। सिर्फ मोर्फिन था। वे निकल चुके थे अनंत की यात्रा पर। उनकी साँस बार बार लड़खड़ा रही थी। बऊदी लगतार उनके कानों में भजन गुनगुना रही थी। मोर्फिन बढ़ा दिया गया था। दूसरे दिन वे अचेत हो गए और उसके अगले आठ घंटे बाद.. पिंजरा टूट गया। हंसा उड़ गया था .. और आज बस दो मुट्ठी राख ! बोलते-बोलते वह सिसक पड़ी थी। शायद बंगाल की माटी का प्रभाव या कि शरत, टैगोर, विवेकानंद और रामकृष्ण का प्रभाव कि आम गृहिणी भी यहाँ जीवन के सत्य असत्य पर तत्त्व चिंतन से पीछे नहीं हटती थी। बाबुलदा की भस्म शायद भट्टी से निकल आई थी, दूर से देखा उन्होंने अपने लोगों को और हड़बड़ाती सी बोली, अच्छा .. अब चलूँगी मेरे पास भी अब समय नहीं बचा है .. वह यह जा वह जा। सोचती रही मैं कितना कुछ कह गयी वह जिसका नाम तक मैं नहीं जानती थी। 'सब कुछ से कुछ नहीं की आँख मिचौनी की कहानी'।

आस-पास की आवाजें गंगा की कल कल ध्वनि और आसमान में उड़ते परिंदों के साथ मिलकर एक रहस्यमय वातावरण की सृष्टि कर रही थीं। जाने कितनी ही ऐसी कथाएँ लिखी गयी होंगी गंगा की इन लहरों पर ! दूर क्षितिज पर डूबता रक्ताभ सूरज मुझसे आँख मिला रहा था और मुझे बता रहा था कि बाबुलदा की तरह मैं भी तो व्यतीत हो रही थी। इस अहसास ने मुझे गहरी उदासी से भर दिया इतना कि मेरी आँखें डबडबा रही थी। कुछ बचा हुआ भी था, अगली सुबह की उम्मीद सा। आँखों में आँसू और मन में एक संकल्प उभरा..मैं जिन्दगी को व्यर्थ नहीं जाने दूँगी.. यह वादा रहा मेरा तुमसे ओ जिन्दगी ! शायद मैं अपने को दुबारा खोज रही थी !

संपर्क-सूत्र:
मोबाइल: 9167735950